भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप

लेखक
डा० राय गोविन्द चन्द्र

प्रकाशक
काशी मुद्रणालय,
विश्वेश्वरगंज, वाराणसी।

प्रथम सस्करण १५ फरवरी १९५८ ई०

मूल्य ५)

मुद्रक—

काशी मुद्रणालय,

विश्वेश्वरगंज, वाराणसी।

श्रद्धेय

डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल

प्राध्यापक काशी विश्वविद्यालय

के

कर कमलो मे सादर सपर्पित
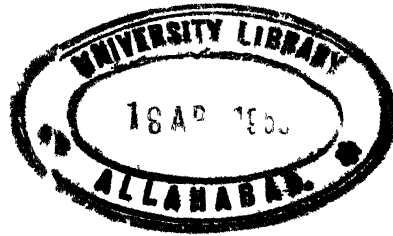
प्रस्तावना

सस्कृत तथा पाली ग्रन्थों के अन्वेषण से ऐसा ज्ञात होता है कि नाटक प्राचीन भारतीयो के जीवन का अभिन्न अग था। पाणिनि से लेकर हिन्दी के पृथ्वीराज रासो तक मे हमे नाटको के विवरण प्राय सभी ग्रन्थो में प्राप्त होते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को पढने से तो ऐसा भास होता है कि नागरिक जीवन के इस अग पर राज्य को नियत्रण करने की आवश्यकता पड गई थी (कौटिल्य—अर्थशास्त्र, अध्यक्ष प्रचार अधिकरण २७। ३६, ४१)। नाटक की उपयोगिता को भी लोग भली-भाँति समझने लग गए थे तथा राजा की ओर से नट-नटियाँ गुप्तचरो के वेश में दूसरे राज्यों में भी भेद लेने को भेजी जाने लगी थी (कौटिल्य षडगुण्य, सप्तम अधिकरण, ४३, ४४)। इनका वेतन प्राय निश्चित था जो ३५० पण से ७०० पण तक होता था (कौटिल्य—योगवृत्त अधिकरण ५। १६, १७) तथा राज्य की ओर से नटो की मण्डलियों पर कर भी लगने लगा था (कौटिल्य—अध्यक्ष प्रचार प्रकरण—२७। ३६) जैसे आज के आमोद-प्रमोद पर लगता है। प्राय नट और नटियों के रूप मे लोग राजाश्रय प्राप्त करके अपना कार्य भी बना लेते थे, जैसा हम मालविकाग्निमित्र में देखते हैं। इतना सब होते हुए भी अभी तक हमें यह निश्चित रूप से पता नही लग सका कि हमारा विश्वविख्यात कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र अथवा शूद्रक का मृच्छकटिक या भास का स्वप्नवासवदत्ता किस प्रकार के नाट्य-मण्डप में खेला जाता था, तथा इन मण्डपों के क्या रूप थे। अभी तक की खोज के फलस्वरूप हमें सीताबेंगा गुफा को छोडकर कोई ऐसा गृह नही प्राप्त हुआ है जिसे हम साधिकार नाट्य-मण्डप की सज्ञा दे सके।

भरत नाट्य-शास्त्र मे जो प्राय ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में सकलित समझा जाता है, हमें नाट्यमण्डप के प्राचीन रूप का भी सकेत प्राप्त होता है, जो पहाडों की गुफा मे बनता था—'शैल गुहाकारो'। पहाडों की कन्दराएँ प्राय नागरिको के आमोद-प्रमोद के काम मे आती थी यह तो सर्वमान्य है (कुमारसम्भव—१, १०, मेघदूत—१, २७)। कोई आश्चर्य नही कि इनमे भरत के पूर्व नाटक भी खेले जाते रहे हो। सीताबेंगा गुफा का आकार-प्रकार तथा उसके समक्ष बना प्रेक्षको के हेतु सीढीनुमा स्थान इस धारणा को पुष्ट ही करता है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में इस प्रकार के गुफारूपी नाट्यमण्डपों के आकार

को तथा आर्यों के तम्बुनुमा नाट्यमण्डप के आकार को जिनमे वे कदाचित् पहले अपने नाटक खेलते थे, दोनों को अपनाया है। इन दोनो के समिश्रण से जो रूप उन्होने नाट्यमडपो के निर्धारित किये वे सर्वथा भारतीय हैं। प्राचीन ग्रीक और रोमन स्वरूपो से इनका कोई सम्बन्ध नही प्रतीत होता। पाश्चात्य नाट्यमण्डप तो खुले मैदानों मे बनते थे तथा उनमे दर्शकों के हेतु अर्द्धचन्द्राकार सीढीनुमा प्रेक्षास्थान बनते थे। यहाँ उसके विपरीत नाट्यमण्डप की व्यवस्था एक गृह के भीतर प्राप्त होती है।

भरत ने नाट्यमण्डपो के तीन आकार बताए हैं, विकृष्ट, चतुरश्र और त्र्यश्र। आज भी हमें कही त्रिकोण नाट्यमण्डप देखने को नही मिलते, चौकोर तथा लम्बे तो मिल भी जाते हैं। प्राय त्रिकोण नाट्यमण्डप के लाभ पर हमारा ध्यान अभी तक नही गया है। इसमे थोडे स्थान में हम नाट्य कर्म कर सकते हैं। विकृष्ट नाट्यमण्डप की विशेषता यह है कि इसमे अधिक जनसमुदाय बैठ सकता है। इन नाट्यमण्डपों के विस्तार में आधा स्थान नाट्य के पात्रो के हेतु तथा आधा दर्शको के हेतु रहता था। आज दर्शको के हेतु अधिक स्थान रहता है, पात्रो के हेतु कम।

इन तीन प्रकार के नाट्यमण्डपो को नाप-जोख के हिसाव पर ज्येष्ठ, मध्यम और अवर इन तीन विभागों में बाँटा गया है। ज्येष्ठ देवताओं के हेतु, मध्यम राजाओं के हेतु तथा अवर जनसाधारण के लिये। कदाचित् देवताओं के हेतु बडा स्थान इस कारण आवश्यक समझा जाता था क्योंकि ऐसा विश्वास था और है कि ये स्वर्गवासी तो मनुष्यो से आकार में भी बड़े ही होंगे। राजाओं के साथ उनके समाज का होना आवश्यक था, इस कारण भी उनके हेतु औरो की अपेक्षा अधिक बड़े नाट्यमण्डप की व्यवस्था है। जनसाधारण उतना व्यय भी तो नही कर सकता था जितना राजा लोग, इस कारण उनके हेतु छोटे नाप के नाट्यमण्डप बनते थे।

इन नाट्यमण्डपो के बनाने के हेतु जो नाप–जोख का व्योरा हमें यहाँ प्राप्त होता है वह भी बड़ा वैज्ञानिक है। नाप का आधार ही अणु है। आज हम अणु और परमाणु के युग वाले भी इसमें कोई नई धारणा नही स्थापित कर सकते। आठ अणुओ का एक रज बताया गया है (भरत—२, १३)। इस प्रकार के नाप में कही भूल होने की सम्भावना ही नहीं है।

नाट्यमण्डप को भरत ने तीन भागों में आज के रंगमच की भाँति बाँटा है तथा

एक में प्रेक्षागृह, दूसरे मे रगशीर्ष, रगपीठ तथा तीसरे मे नेपथ्य की योजना की है। नेपथ्य मे भी पात्रो के हेतु सूचिका बनाने का विधान मिलता है। दर्शको को नाटक देखने के हेतु जो भी सुविधाये उस समय दी जा सकती थी, उन सबका यहाँ समावेश है। भरत ने नाट्य-मण्डपो के स्वरूप को यही नही छोड दिया है, उनको सुसज्जित तथा आकर्षक बनाने के हेतु भी युक्तियाॅ बताई हैं, जिससे ऐसा अनुमान होता है कि नाट्यमण्डपो की भरत के समय तक एक रमणीक स्थान के रूप में कल्पना हो चुकी थी।

भरत नाट्यशास्त्र के विवरण को पढने से हठात् यह भावना उठने लगती है कि जब आचार्यों ने नाट्यमण्डपो के विषय मे इतनी बाते बताई तो कुछ छोड़ क्यो दी? कुछ खम्भो के स्थान बताये तो औरो के क्यों नही बताये? खिड़कियो के स्थान के बताने मे क्या औचित्य था? इससे ऐसा अनुमान होता है कि देश मे उस समय भी कुछ ऐसे राजगीर थे जो केवल नाट्यमण्डप बनाया करते थे और इनके निर्माण के विशेष नियम वे ही जानते थे, विद्वानो को तो केवल मोटी-मोटी बातों का ही पता था। इस प्रकार इन राजगीरो की सहायता के बिना नाट्यमण्डपो का बनना कठिन था, इसी कारण भरत ने भी इनकी सहायता लेने की बात कही है (भरत—२, २४)। कदाचित् उस समय तक सबके कर्म निश्चित हो चुके थे और विद्वान कारीगरों के काम में हस्तक्षेप नही करते थे। इसी कारण हमे कही-कही कुछ बाते छूटी हुई प्रतीत होती हैं।

१९५४ मे मैने फ्रास मे इस विषय पर कुछ कार्य प्रारम्भ किया था परन्तु समयाभाव के कारण वह पूर्ण न हो पाया। अभी भी यह कार्य अपूर्ण ही है परन्तु आज का दृष्टिकोण अपूर्ण खोज के कार्य के भी प्रकाशन की माॅग करता है। अत यह प्रयास पाठको के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है, जिसमें विद्वानो का ध्यान इधर आकृष्ट हो तथा इस विषय पर भी वैज्ञानिक ढग से अन्वेषण हो और हम प्रत्येक युग के अपने नाट्यमण्डपो के स्वरूप को पुन अपने समक्ष उपस्थित कर सके।

कुशस्थली **गोविन्द चन्द्र**
वाराणसी

भरत नाट्यशास्त्र में नाट्यशालाओं के रूप

भारत की किसी भी विद्या के इतिहास की खोज का कार्य कठिन है। मॅस्यु सिलवॉं लेवी कहते हैं कि भारत के लोगों का चमत्कार मे विश्वास अधिक होने के कारण यह पता लगाना कठिन है कि प्राचीन समय में इस देश में नाट्य का किस प्रकार विकास हुआ (सिलवॉं लेवी, लॅ थियात्र ऑंदिया, पृ० २६७)। प्राय यह विश्वास किया जाता है कि वेदों की भाँति नाट्य का जन्म भी ब्रह्मा से हुआ (श्री सीताराम चतुर्वेदी, अभिनव नाट्यशास्त्र, पृ० १६-१७)। इसका विवरण भरत-नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय मे भी मिलता है—श्रूयतां नाट्य-वेदस्य सम्भवो ब्रह्मनिर्मितः (भरत, १—७) परन्तु नाट्य के इतिहास के जिज्ञासु को इस वाक्य से कोई लाभ नहीं होता। प्राचीन मिस्र में नाट्य के विषय में ऐसा विचार था कि ओसरिस की पूजा से इसकी उत्पत्ति हुई थी (ज्योर्ज फ्रीडले इत्यादि, ए हिस्ट्री ऑफ दि थियेटर, पृ० २-६)। प्राय ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी प्रयोगशालाएँ ओसरिस के मन्दिर मे ही हुआ करती थीं जो चौकोर बनती थी। मूर्ति के समक्ष ही नाटक खेले जाते थे। सबसे प्राचीन नाटक हमे मिस्र में ४००० वर्ष ईसा से पूर्व के मिलते है (ज्योर्ज फ्रीडले, ए हिस्ट्री ऑफ दि थियेटर, चित्र १)। भारत की प्राचीनतम सभ्यता के अवशेष जो सिन्ध की उपत्यका मे मिले हैं उनमे कुछ मिट्टी के मुँह पर लगाने के चेहरे मिले है जो मनुष्यों के आकार के है। परन्तु इनके सिर पर दो सींग विद्यमान है। एक चेहरे के सींग बैल के सींग की भाँति है। तथा दूसरे के मेढ़े की भाँति (मैके, फरदर एक्सकवेशन एट मोहनजोदड़ो, फलक ७४, चित्र २१, २२, २५, -६, फलक ७६, चित्र १, २, ३, ४)। इन चेहरो के मिलने से ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन सिन्धुवासियो के नगरो मे भी नाटक खेले जाते थे। नटी की काँसे की मूर्तियाँ तथा एक नट की मूर्ति भी इस धारणा को पुष्ट करती हैं (मारशल, मोहनजोदड़ो एण्ड इण्डस सिविलीजेशन, फलक ६४ तथा, मैके, फरदर एक्सकवेशन, फलक ७३, चित्र १०-११)।

सबसे प्राचीन साहित्यिक निर्देश नाटक के विषय मे हमे यजुर्वेद के पुरुषमेध यज्ञ के प्रकरण मे मिलता है (शुक्ल यजुर्वेद ३०, ६, १) । यो तो मस्यु सिलवॉ लेवी का कहना है कि ऋक् की १५ ऋचाएँ ऐसी हैं जो नाट्यके संवाद की भॉति प्रतीत होती है (लेवी, उपरोक्त, पृ० ३०१) । यदि यजुर्वेद के समय नाट्य की कोई व्यवस्था यज्ञ के समय हुआ करती थी तो वह अग्नि के सम्मुख ही होती होगी । कोई विवरण अभी तक इस प्रकार का प्राप्त न होने के कारण इस विषय मे कुछ कहना कठिन है । पाणिनि की अष्टाध्यायी मे नट और नन्दीकर शब्द मिलते हैं (पाणिनि ३, २, २१) । इससे ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि उस समय रंगभूमि की व्यवस्था थी तथा नाट्य भी होते थे ।

अर्थशास्त्र मे कौटिल्य ने षाड्गुण्य नामक अधिकरण मे शत्रु के पास से राजकुमारो को छुड़ा लाने के उपायो के निर्देश मे नटो, नर्तको, गायको तथा अभिनेताओ को शत्रु के राज्य मे भेजने का निर्देश किया है । इससे ज्ञात होता है कि नट तथा अभिनेता उस काल मे विद्यमान थे । कौटिल्य के योगवृत्त अधिकरण मे इनके वेतन की व्यवस्था मिलती है जो उस समय ३५० से ७०० पण तक होता था । इससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस समय इस व्यवसाय मे अच्छा पैसा मिलता था । कौटिल्य के अर्थशास्त्र से हमे नाट्यशालाओ का भी सकेत प्राप्त होता है । अध्यक्ष प्रचार अधिकरण के प्रथम अध्याय मे निम्नलिखित वाक्य प्राप्त होते है— ' न च तत्राराम विहारार्था. शाला' स्यु'' ॥४१॥ नट नर्तक गायक वादक वाग्जीवन कुशीलवावान कर्म विघ्नम् कुर्यु. ॥४२॥ इन वाक्यो से यह पता चलता है कि उस समय नाट्य के लिये शालाएँ नगर मे बनाई जाती थीं ।

इसी प्रकार बौद्ध निकायो मे भी हमे नट तथा नटगामनी शब्द मिलते है (हजरा आर. सी , बुद्धिस्ट एविडेन्स फॉर दि अर्ली एकजिस्टेन्स आफ ड्रामा, आई एच. क्यू. जून १९३१, खण्ड १७, सं० २, पृ० १६७) । पतञ्जलि के महाभाष्य मे कसबध और बालिबध नाटको के विषय मे संकेत प्राप्त होता है-''इह तु कथ वर्त्तमानकालता कंसं घातयति बलिं बन्धयतीति चिरहते कसे चिरबद्धे च बलौ । अत्रापि युक्ता । कथम् । ये तावदेते शोभनिकानामैते प्रत्यक्षं कसं घातयंति प्रत्यक्ष च बलिं बन्धयन्तीति ।''

वाल्मीकि रामायण के काल मे ऐसा ज्ञात होता है कि नट नर्तको के संघ भी बन गए थे (अयोध्याकाण्ड ६, १४) तथा जनता इनके मनोहर वचनो से अपना मनोरजन भी करती थी। "नट नर्तक सघानाम् गायकानाम् च गायताम्। यतः कर्णसुखा वाच सुश्राव जनता त्त।" इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नटो के कार्य के लिये नटशालाये थी जिनमे जनता का प्रवेश था। हरिवश मे हमे रामायण नाटक तथा कौबेर रम्भाभिसार नाटको के प्रकरण प्राप्त होते है। परन्तु उन नाटको के हेतु जो रगशालाये बनाई गई होगी उनका विशेष परिचय नहीं प्राप्त होता। वात्स्यायन के कामसूत्र मे 'समाज' शब्द प्राप्त होता है जो कदाचित् नाटक के समारोह का द्योतक था। ये समाज प्राय सरस्वती भवन मे हुआ करते थे (वात्स्यायन, नागरक वृत्त प्रकरण घटा निबन्धन-१५)। 'समाज' शब्द प्राय इसी अर्थ मे दीघनिकाय मे भी प्राप्त होता है। (दीघनिकाय-पारी ३-१५३) कदाचित् ये 'समाज' वे ही है जिनके विषय मे अशोक के एक अभिलेख मे यह मिलता है कि 'समाज' बड़े उच्छृङ्खल हो गये थे तथा उनसे हानि की सम्भावना थी। (डा० भण्डारकर, अशोक (१६३२) पृ० २६७, डा० भण्डारकर, इण्डियन अण्टिक्वेरी ख० १३ (१६१३) पृ० २५५, २५८, एन० जी० मजूदार इण्डियन अण्टिक्वेरी ख० ४८ (१६१८) पृ० २२१, २२३ मोनिन्द्र मोहन बोस-दि रिलीजन आफ अशोक बुद्ध, जरनल आफ दी डिपार्टमेण्ट आफ लेटर्स, युनिवर्सिटी आफ कलकटा, ख० १० (१६२३) पृ० १४१-१४३ इत्यादि)। ये 'समाज' कदाचित् अशोक के पश्चात् सरस्वती भवन मे होने लग गये होगे। कामसूत्र मे हमे 'प्रेक्षण' शब्द प्राप्त होता है जिससे सबंधित 'प्रेक्षागृह' शब्द था। कुशीलवाश्चागन्तव प्रेक्षणकमेषाम् दद्यु । धूप विलेपन घटा प्रकरण, १६) जातको मे भी 'नट' तथा 'नाटक' शब्द प्राप्त होते है (कुश जातक, तथा उदय जातक)। परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि ये बौद्ध नाटक संघाराम मे ही हुआ करते होगे। जैन रायपसेणिय सुत्त मे हमे नाट्यगृह का एक प्राचीन वर्णन प्राप्त होता है। नाट्यभवन को 'पेच्छाघर मण्डप' कहते थे। इस घर मे कई वेदियाँ होती थी तथा यह अनेको खम्भो तथा अर्धचन्द्राकार तोरणो से सुशोभित होता था जिनपर 'शालभञ्जिकाये' तथा 'ईहामृग' बनाकर लगाये जाते थे। इस प्रकार के भवनो की दीवाल सुन्दर चिकनी बनाई जाती थी जिन पर विविध प्रकार की चित्रकारी की जाती थी। छत पर कमल तथा लताओ की आकृतियाँ

बनाई जाती थी। रंगद्वार पर तोरण बनाये जाते थे तथा दोनो ओर चन्दन से सुगन्धित जल भरे हुए घट रखे जाते थे। रंगमच के समक्ष रंगीन पर्दे डाले जाते थे जिनमे घंटियाँ लटकी रहती थी जिसमे पर्दा खोलने के समय वे बज उठे। रंगमच को 'अखाडग' कहते थे। यह नाट्यमण्डप के बीच मे स्थित रहता था। इसमे बहुत से यन्त्र लगे रहते थे जो विद्याधरो इत्यादि को दिखाने के कार्य मे प्रयुक्त होते थे। इस रंगमंच के बीच मे एक सिहासन रहता था। अग्नि-पुराण मे भी ३३८ से लेकर ३४२ अध्याय तक रस, रीति, नृत्य, नाटक तथा अभिनय इत्यादि पर हमे कुछ सामग्री प्राप्त होती है। परन्तु अग्नि पुराण, कदाचित् भरत नाट्यशास्त्र के पीछे का ग्रन्थ है इस कारण उसकी उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती। शिल्परत्न, काव्यमीमासा तथा सगीतमार्तण्ड मे भी राजाप्रसाद के नाट्यमण्डपो के कुछ विवरण प्राप्त होते है (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थियेटर, पृ० २५)। परन्तु ये भी ग्रन्थ भरत नाट्यशास्त्र से प्राचीन नही है। इन सब प्रमाणो से स्पष्ट यह पता नही लगता कि नाट्यो का किस प्रकार विकास हुआ तथा नाट्यमण्डपो का प्राथमिक रूप क्या था।

डा० वासुदेव शरण जी का यह विचार है कि हमारे यहाँ प्राचीन काल मे जो उत्सवो पर मेले होते थे उन्हें "मह" कहते थे तथा उन महो मे एक मह इन्द्रमह के नाम से विख्यात था। इसी मह मे इन्द्रध्वज की पूजा होती थी तथा नाटक की उत्पत्ति भी उसी इन्द्रमह से हुई (डा० वासुदेव शरण, इण्डिया एज नोन टु पाणिनि पृ० ३३९-४०)। भरत-नाटयशास्त्र मे भी इसीकी ओर संकेत प्राप्त होता है। (भरत १-५३, ५४, ५५) इस उत्सव के जन्म की कथा बृहत् संहिता मे मिलती है तथा यह उत्सव प्राय भाद्र शुक्ल द्वादशी को होता था।

ऐसा अनुमान होता है कि भारत के आदिवासी अपने नाटक गुफाओ मे खेला करते थे तथा आर्य खुले स्थानो मे, तम्बूओ मे। ऐसे तम्बू हमे निनवे की खुदाई से प्राप्त एक पत्थर पर खुदे मिलते है। (हावेल दी हिमालयाज इन इण्डियन आर्ट, पृ० ३१) इन दोनो का समन्वय हमे भरत नाटयशास्त्र मे मिलता है। यहाँ एक ओर तो नाटयमण्डपो मे खम्भो की व्यवस्था है (भरत २-४५ से ५६) तथा दूसरी ओर यह निर्देश है कि 'कार्य. शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाट्य-

मण्डप' (भरत २–८१)। अभी तक नाट्यमण्डपो के जो प्रमाण भारत मे प्राप्त होते है उनमे ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे ठोस तो सीतावेगा तथा जोगीमारा गुहा के मण्डप है। ये गुफाये सरगुजा राज्य के अन्तर्गत विन्ध्य-प्रदेश मे हैं। (ब्लाश जे० एच० आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, १९०३-०४, पृ. १२३-१३०)। जोगीमारा गुफा मे जो लेख प्राप्त हुआ है वह अशोक के समय की ब्राह्मी मे लिखा हुआ है (ब्लाश, वही, चित्र ४३)। सीतावेगा गुफा से प्राप्त लेख कुछ ही पीछे का ज्ञात होता है। जोगीमारा गुफा के लेख से यह पता चलता है कि वह गुफा सुतनुका नाम की देवदासी ने नर्तकों अथवा नटियो के हेतु बनवाई थी (नर्तकों के स्थान मे नटियो भी पढ़ा जा सकता है)। सीतावेगा गुफा नाट्यमण्डप की भाँति बनी हुई है। इसके समक्ष सीढ़ी की भाँति प्रेक्षागृह के भी अवशेष विद्यमान है (ब्लाश, वही, फलक ४३, सी)। इसके सामने का भाग अशोक के समय के लोमश ऋषि की गुफा से कही साधारण है। यहाँ द्वार पर न कोई खुदाई है, न कोई सजावट (वेजामिन रोलाण्ड, दी आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर आफ इण्डिया, चित्र ७)। इससे ऐसा अनुमान होता है कि ये गुफाये लोमश ऋषि की गुफा से प्राचीन है। भारत मे गुफाये जनमनोरंजन के काम मे तो बहुत प्राचीन समय से आती रही है जैसा हमे अश्वघोष (सौन्दरानन्द, ६, ३३) तथा कालिदास के ग्रन्थो से विदित होता है (कुमारसम्भव १।१०, मेघदूत १। २७)। इस कारण यह अनुमान करना कि ये गुफाये नाट्यमण्डपो के अवशेष है कुछ अनुचित नहीं है। सीतावेगा गुफा ४६ फीट लम्बी तथा २४ फीट चौड़ी है। गुफा के भीतर प्रवेश करने के हेतु बाईं ओर से सीढ़ियाँ बनी है जो कदाचित् पात्रो के प्रवेश के हेतु काम मे लाई जाती थी। गुफा के भीतरी भाग मे रंगमंच की व्यवस्था है। मंच तीन मेधियो पर बने है। प्रत्येक मंच सात फीट छः इंच चौड़ा है। तीनो की सतह एक दूसरे से २½ फुट ऊँची है। (ब्लाश, वही, पृ० १२६)। ये मंच ढालुआँ बने है। चबूतरो के समक्ष दो छेद बने है। कदाचित् इनमे बाँस या लकडी के खम्भे पहनाकर पर्दे लगाये जाते थे (ब्लाश, वही, पृ० १२७)। दर्शकों के बैठने का स्थान जो इस गुफा के समक्ष बना हुआ है वह ग्रीक आम्फी थियेटर की भाँति सीढ़ीनुमा है। उन सीढ़ियो पर कदाचित् लकड़ी के पटरे रखकर बैठने का स्थान बनाया जाता था, जैसा ग्रीक थियेटर मे पीछे चलकर होने

लगा था। सीतावेगा के समक्ष जो प्रेक्षागृह है उसमे ५० आदमी बड़े सुख से बैठ सकते है।

अब यदि हम भरत नाटयशास्त्र मे दिये हुए विकृष्ट नाटयमण्डप के विवरण से इसके आकार प्रकार को मिलाये तो हमे ज्ञात होगा कि बहुत से अंशो मे यह गुफा उससे मिलती है। जैसे भरत नाटयशास्त्र मे रगमंच के हेतु यह निर्देश है कि 'कार्य' शैलगुहाकारो द्विभूमिर्नाटयमण्डप' (भरत नाटयशास्त्र, चौखम्भा सस्करण, २। ८१, एम ए घोष, नाटयशास्त्र पृष्ठ २६)। अब यदि यह अनुमान किया जाय कि भरत के समय के पहिले नाटक गुफाओ मे खेले जाते थे तथा भरत ने उस प्राचीन आकार प्रकार को अपने नाटयमण्डप मे भी बनाने का निर्देश किया तो अनुपयुक्त न होगा। आगे उन्होने मण्डप को दो स्तरो मे विभाजित करने का निर्देश दिया। यहाँ भी प्रेक्षा की भूमि का स्तर एक है और गुफाओ के रंगमंच का दूसरा। लम्बाई चौड़ाई भी यदि मिलाई जाय तो भी ज्ञात होगा कि विकृष्ट नाटयमण्डप की लम्बाई चौड़ाई जो मनुष्यो के लिये निर्धारित है, वह है लम्बाई ४८ फीट और चौडाई २४ फीट। सीतावेगा की लम्बाई इस प्रकार केवल दो फीट कम पड़ती है। कदाचित् नापजोख मे कुछ अन्तर पड़ा हो, या पहले ४६ फीट लम्बाई रहती हो, पीछे बदली हो।

नाट्यमण्डप की माप—भरत नाटयशास्त्र मे जो विद्वानो के मतानुसार ईसा की दूसरी शताब्दी मे लिपिबद्ध किया गया (एम एम घोष, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, खं० २७, नवम्बर-दिसम्बर १९५१, पृ० ३४०) तीन प्रकार के नाटयमण्डपो का विधान प्राप्त होता है, विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र, (भरत, २। ८)—

> विकृष्टश्चतुरस्रश्च त्र्यस्रश्चैव हि मण्डप।
> तेषा त्रीणि प्रमाणानि ज्येष्ठ मध्यं तथाऽवरम्॥ [दे० फलक १]

शिल्परत्न मे (ख० १।३६, ६०, ६७) तथा भावप्रकाश में (भावप्रकाश, शारदातनय, बड़ौदा, १९३०, पृ० २६५, पक्ति ६-१८) भी तीन प्रकार के नाटयमण्डप मिलते है। परन्तु विष्णुधर्मोत्तर पुराण मे केवल विकृष्ट तथा चतुरस्र नाटयमण्डप प्राप्त होते है (ख० ३। २०। ४)। ऐसा ज्ञात होता है कि विकृष्ट नाटयमण्डप ही बहुत प्रचलित थे। अब इन तीन प्रकार के मण्डपो के तीन भेद किये

गये, ज्येष्ठ, मध्यम तथा अवर। इनके विषय मे आगे चलकर इसी अध्याय मे हमें यह मिलता है कि देवताओ के हेतु ज्येष्ठ मण्डप बनाने चाहिए, राजाओ के हेतु मध्यम तथा औरो के हेतु अवर (भरत नाट्यशास्त्र २ । ११)—

देवानां भवन ज्येष्ठं नृपाणा मध्यमं भवेत् ।
शेषाणां प्रकृतीनां तु कनीय संविधीयते ॥

इनकी नाप को मिलाने से ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओ के हेतु जो मण्डप बनते थे वे ५१ मीटर लम्बे होते थे, राजाओ के हेतु २६ मीटर तथा इतर जनो के हेतु १४ ५ मीटर (भरत नाट्यशास्त्र २ । ६–१०)। अब चतुरस्र मण्डप की चौड़ाई तो लम्बाई के बराबर ही होगी। विकृष्ट की चौड़ाई इस प्रकार दी हुई है, ज्येष्ठ की २५.५ मीटर, मध्यम की १४ ५ मीटर तथा छोटे की ७ २५ मीटर। इस प्रकार नौ भाँति के मण्डपो का विवरण हमे भरत नाट्यशास्त्र मे मिलता है (एम० एम० घोष, नाट्यशास्त्र पृष्ठ १६ फुटनोट)। एक और निर्देश से यह ज्ञात होता है कि मनुष्यो के हेतु ६४ हाथ से लम्बा मण्डप न बनाना चाहिए, क्योकि बहुत बड़े मण्डप मे भावभंगी नही दिखाई देती तथा शब्द स्पष्ट नही सुनाई देते (भरत नाट्यशास्त्र २ । १८-१६-२०, विष्णुधर्मोत्तर पुराण ३ । २० । ४)। यहॉ हमे मण्डप को दो भागो मे विभाजित करने का भी निर्देश मिलता है, एक दर्शको के हेतु तथा दूसरा भाग कलाकारो के हेतु। इसके एक हिस्से मे प्रदर्शन की व्यवस्था तथा दूसरे मे नेपथ्य की रहती थी। नाट्यमण्डप चारो ओर से दीवार से घिरा रहता था। मण्डप के धारण के हेतु इसमे खम्भे खड़े करने के लिये भरत ने लिखा है। दर्शको के हेतु जो भाग नाट्यमण्डप मे अलग व्यवस्थित है उसमे बैठने के स्थान को सीढ़ी की भॉति बनाने का निर्देश है। "सोपानकृत पीठकम्" (भरत २ । ६१) इस प्रकार बनने पर प्रेक्षागृह वैसा ही लगेगा जैसे सीतावेगा गुफा के सामने की ओर मिलता है।

सबसे पूर्व भरत नाट्यशास्त्र मे नाट्य-मण्डप के निर्माण के हेतु नाप के आधार दिये हुये है—

आठ अणुओ का एक रज
आठ रजो का एक बाल

आठ बालो का एक लिक्षा
आठ लिक्षाओ का एक यूका
आठ यूकाओ का एक यव
आठ यवो की एक अंगुली
चौबीस अंगुलियो का एक हस्त
चार हस्त का एक दण्ड (भरत २-१३, १४, १५, १६)।

इस प्रकार जोड़ने पर एक हस्त ४५६ मीलीमीटर का हो जाता है। जो नाप के आधार कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे दिये हुये है इन नापो के आधारो से मिलता हुआ है (मनकड-इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ख० ८-३ पृ० ४८२ नोट) जो नाप के आधार पाणिनि मे प्राप्त होते है वे भी इनसे मिलते मालूम होते है (डा० वासुदेव शरण इण्डिया एज़ नोन टु पाणिनि पृ० २५७)। क्योकि अंगुली की नाप आठ यव के बराबर अर्थशास्त्र मे भी दी हुई है (कौटिल्य अर्थशास्त्र २-२०) तथा पाणिनि मे भी (पाणिनि अष्टाध्यायी ५-४ ८६) और नाट्यशास्त्र मे भी "यवास्त्वष्टो तथाङ्गुलम्" (भरत २-१५)। दण्ड के नाप मे कुछ अन्तर ज्ञात होता है। भरत नाट्यशास्त्र मे ९६ अंगुलियो का एक दण्ड मिलता है और पाणिनि में १९२ का। डा० वासुदेव शरण जी ने एक अगुली की नाप ३/४ इच मानी है। (डा० वासुदेव शरण वही पृ० २५५) ऐसा प्रतीत होता है कि ये नाप सिन्धु-सभ्यता के पश्चात् इस देश मे चालू हुये होगे क्योकि उस प्राचीन सभ्यता मे जो नाप मिले है उनका आधार दशमलव है (माके फरदर एक्सकवेशन ख० १ पृ० ४०४-४०५) हस्त तथा दण्ड के प्रमाण स्पष्ट है। परन्तु कई स्थानो पर भरत नाट्यशास्त्र में दण्ड तथा हस्त मे भ्रमात्मक पाठ मिलता है। कई टीकाओ मे भी इसी कारण कुछ गड़बड़ी है।

भूमि परीक्षा—वास्तु प्रारम्भ करने के पूर्व भूमि की पूरी परीक्षा करने का निर्देश भरत नाट्यशास्त्र मे मिलता है। यह कार्य 'विचक्षण' अर्थात् विशेषज्ञ द्वारा होना चाहिये। नाट्यमण्डप के हेतु ऐसी पृथ्वी खोजनी चाहिये जो सम हो, स्थिर हो (ज्वालामुखी के समीप की नहीं), कड़ी हो, जहाँ की मट्टी काली अथवा श्वेत वर्ण की हो (भरत २।२५)। इस प्रकार की पृथ्वी कदाचित् इस कारण चुनी जाती थी

कि उस पर बना हुआ नाट्यमण्डप नाट्य के समय गिर न पड़े तथा पात्र बेधड़क अपने कार्य को कर सके। यो नाट्यमण्डप के हेतु पृथ्वी चुन लेने के पश्चात् उसे हल चलाकर शोधन करना चाहिये जिसमे अस्थि, कील, त्रिण, गुल्म इत्यादि निकल जायॅ। कार्य आरम्भ करने के हेतु निम्नाकित नक्षत्र भरत ने निर्धारित किये है (भरत २। २८)—

हस्त तिष्यानुराधाश्च प्रशस्ता नाट्यकर्मणि।
पुष्यनक्षत्र योगे तु शुक्ल सूत्र प्रसारयेत्॥

यह समय उत्तर भारत मे प्राय आज भी गृहनिर्माण के हेतु अति उपयुक्त समझा जाता है।

रेखांकन— पृथ्वी के शोधन के पश्चात् नाट्यमण्डप की नाप पृथ्वी पर निर्धारित करनी चाहिये (भरत २। २७)

शोधयित्वा वसुमती प्रमाणं निर्दिशेत् तत।

इस कार्य के हेतु शुक्ल रज्जु का प्रयोग बताया गया है। "शुक्ल सूत्रं प्रसारयेत्" (भरत २। २८)। यह सूत्र चाहे कपास का हो, चाहे बल्बज घास का, चाहे वल्कल छाल का हो, अथवा मूॅज का हो। परन्तु यह कही से टूटा हुआ अथवा जोड़ा न होना चाहिये (भरत २–२९)। इस वाक्य से बोध होता है कि भरत के समय मे भी भूमि पर रस्सी को चूने मे डुबोकर गृह प्रमाण के हेतु चिह्न अकित किये जाते थे। आज भी राजगीर इसी प्रकार निशान बनाकर तब नीव की खोदाई प्रारम्भ करते है। प्रमाण लेने का कार्य पूर्व की दिशा से प्रारम्भ किया जाता था (भरत २–३६) जैसा आज भी होता है। परन्तु इसे मुहूर्त तथा तिथि के अनुकूल होने पर शान्तिपाठ के पश्चात् ही प्रारम्भ करने का विधान मिलता है (भरत २। ३३)। अब विकृष्ट नाट्यमण्डप के हेतु प्रथम पूर्व की ओर से ६४ हाथ सीधा नापना चाहिये तथा एक रेखा सफेद सूत्र से डालनी चाहिये (फलक १ (१))। इस रेखा को दो बराबर भाग मे बॉटना चाहिये बिन्दु 'ग' पर (भरत २–३४) पुन पश्चिम की ओर से ३२ हाथ उत्तर की ओर नाप कर रेखाकन करना चाहिये (फलक १ (१) ख, घ)। अब विकृष्ट आकृति

बनाने के हेतु घ, ङ दूसरी रेखा क, ख के बराबर खीचनी होगी तथा क, ङ तक एक रेखा ख, घ के बराबर बनानी होगी। घ, ङ की रेखा को बराबर बॉटने के हेतु बिन्दु च लगाना होगा तथा इस प्रकार इस विकृष्ट आकृति के दो विभाग किये जायॅगे (भरत २। ३४) जैसा फलक १ (१) पर 'ग' 'च' रेखा द्वारा किया गया है। अब ग ख घ च एक चतुरश्र बन गया तथा क ग च ङ दूसरा। आगे यह निर्देश मिलता है कि 'तस्यार्धेन विभागेन रगशीर्षं प्रयोजयेत्' (भरत २। ३५)। इसके अनुसार यदि रेखा ग ख को छ, तथा च घ को ज पर दो भागो मे बॉटा जाय तो छ ज को जोड़ने से ग ख घ च दो भागो मे बॅट जाता है। पश्चिम की ओर नेपथ्य होना चाहिये (भरत २। ३६) तो उसके पूर्व रंगमण्डप होगा। इस प्रकार नेपथ्य का स्थान ख घ छ ज निश्चित होता है तथा ग च ज छ नाट्य के हेतु रगमण्डप बन जाता है और क ग च ङ एक चतुरश्र दर्शको के हेतु बचता है।

अब ग च ज छ रंगमण्डप (भरत २। ६६) अर्थात् उस सारे स्थान को जो पात्रो को नाट्यक्रिया दिखाने के काम आता है, की परिधि हुई। इसमे तीन स्थान बनाते है—रंगशीर्ष, मत्तवारणी तथा रंगपीठ। नेपथ्य के द्वार रंगपीठ पर खुलने चाहिये (२। ६६–६७) इस कारण रंगपीठ को पीछे रखना अनिवार्य है तथा रंग-शीर्ष, इसके आगे और मत्तवारणी रंगपीठ के ऊपर। अब रेखा झ ञ द्वारा रंगपीठ तथा रंगशीर्ष को दो हिस्सों मे बॉट देना चाहिये।

चतुरश्र नाट्यमण्डप के हेतु पूर्व से पश्चिम की ओर ३२ हाथ का स्थान पृथ्वी पर नापना चाहिये, ऐसा निर्देश है (भरत २। ८७)। फलक १ (२) की रेखा क ख ३२ हाथ की प्रथम बनानी चाहिये तथा दूसरी दो रेखाये ख घ तथा क ङ रेखा क ख पर सीधी खड़ी की जानी चाहिये और घ से ङ तक एक सीधी रेखा खींची जानी चाहिये। इस प्रकार एक चतुरश्र बन जायगा। चतुरश्र आकार को दो भागो मे बराबर बॉटने के हेतु (भरत २। ८९) रस्सी को दोहरी करके पृथ्वी पर बिन्दु लगाने चाहिये, जैसे फलक १ (२) मे स्थान ग तथा च पर है, और ग च को एक रेखा से जोड़ देना चाहिये। इस प्रकार चतुरश्र के दो विकृष्ट भाग हो जायॅगे। एक क ग ङ च तथा दूसरा ग च घ ख। अब दूसरे विकृष्ट को पुनः दो भागो मे बॉटने के

हेतु रस्सी को चौहरी कर लेना चाहिये तथा छ और ज पर चिन्ह लगाकर एक रेखा छ ज खीच लेनी चाहिये। पुन रस्सी को एकबार दोहरा दिया जाय और बिन्दु झ तथा ञ लगाकर एक रेखा खीच ली जाय। इस प्रकार हमे क ङ च ग एक विकृष्ट स्थान दर्शको के हेतु प्राप्त हो जायगा। ख घ ज छ दूसरा विकृष्ट नेपथ्य के हेतु, छ ज झ ञ रंगपीठ तथा झ ञ च ग रंगशीर्ष के हेतु।

त्रिकोण नाट्यमण्डप का स्वरूप भरत नाट्यशास्त्र से ठीक ठीक पता नहीं लगता (भरत २। १०२-१०४)। यहाँ इतना ही मिलता है कि विकृष्ट तथा चतुरश्र नाट्यमण्डपो की भाँति इसे भी बनाना चाहिये (भरत २। १०४)। कदाचित् इस प्रकार के नाटयमण्डपो का बहुत प्रचार नहीं था। अब मध्यम आकार के त्रिकोण नाटयमण्डप बनाने के हेतु पृथ्वी पर पूर्व से उत्तर की ओर एक सीधी रेखा ३२ हाथ की यदि खीची जाय (फलक १ (३) क ख) (यह कार्य चूने मे रगी हुई रस्सी के द्वारा रस्सी को भूमि पर पटक कर आज किया जाता है) रस्सी को दोहरी करके एक बिन्दु इस रेखा के बीच मे लगा लिया जाय (बिन्दु ग) और इस बिन्दु से एक खडी रेखा ३२ हाथ की क ख पर खडी की जाय जैसी फलक ३ (३) मे रेखा ग घ है तथा ३२-३२ हाथ की दो रेखाये बिन्दु क तथा ख से रेखा ग घ पर बनाई जायँ, बिन्दु घ के जहाँ पर दोनो रेखाये मिलेगी उस स्थान को ठीक से नाप लिया जाय तो एक नाटयमण्डप त्रिकोण आकार का बन जायगा (त्रिकोण क ख घ)। अब यदि रेखाये क घ तथा ख घ को सोलह-सोलह हाथ पर बाँट कर (भरत २। १०३) बिन्दु ङ तथा च लगा लिये जायँ, पुन बिन्दु ङ तथा च से घ तक नापकर रेखाये ङ घ तथा च ख को दो बराबर भागो मे बाँट लिया जाय, अर्थात् च और ङ से आठ-आठ हाथ पर बिन्दु छ तथा ज लगा लिये जायँ तथा एक रेखा छ से ज तक खींच ली जाय। तो छ ज घ एक त्रिकोण बन जायगा। यह स्थान नेपथ्य के हेतु हो जायगा। अब खडी रेखा घ ग को यदि दो बराबर भागो मे बाँट लिया जाय तथा बिन्दु झ बीच मे लगा लिया जाय और दो बिन्दु छ तथा ज से झ तक यदि दो रेखाये खीच दी जायँ तो एक त्रिकोण छ ज झ बन जायगा जो रंगपीठ (भरत २। १०३) और मत्तवारणी के हेतु निर्धारित किया जा सकता है। कुछ विद्वानो का मत है कि त्रिकोण नाटयमण्डप मे मत्तवारणी नही बनाई जाती थी (मॉकड, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली,

खण्ड २-३ पृ० ४८२ तथा आगे)। अब यदि रंगशीर्ष का स्थान निर्धारित करने के हेतु च से ज तथा ड से छ तक की रेखाओं को दो भागों में विभक्त किया जाय तथा ट और ञ दो बिन्दु लगा लिये जायँ और रेखा ग घ के भाग झ ग को भी दो बराबर भागों में बाँटकर ठ बिन्दु लगा लिया जाय तथा अब बिन्दु ठ से ट तथा ञ तक दो रेखायें खींच ली जायँ तो स्थान ट ज झ छ ञ ठ रंगशीर्ष के हेतु निकल आयेगा। दर्शकों के बैठने के हेतु स्थान क ख ट ठ ञ भी बच जायगा।

भरत नाट्यशास्त्र के पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि मत्तवारणी रंगपीठ के ऊपर ही बना करती थी, क्योंकि रंगपीठ बनाने के पश्चात् ही इसको बनाया जाता था (भरत २। ६४)। रंगपीठस्य पश्चात् तु कर्त्तव्या मत्तवारणी' तथा रंगपीठ से यह ऊँची बनाई जाती थी 'अध्यर्धहस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारणी' (भरत २। ६५)।

इस प्रकार नाट्यमण्डप तीन आकार के बनते थे तथा प्रत्येक में एक प्रेक्षागृह (भरत २। १२), एक नेपथ्य गृह (भरत २। ३६), एक रंगपीठ (२। ६४), एक मत्तावारणी (२। ६४-६५) तथा एक रंगशीर्ष (२। ६६) होता था। सम्भवत. विकृष्ट नाट्यमण्डप में प्रेक्षागृह का आकार चतुरश्र, चतुरश्र मे विकृष्ट तथा त्रिकोण में पचकोण बनता था [फलक ३—(१) (२ (३)]। रंगपीठ तथा नेपथ्य विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में भी विकृष्ट, तथा त्रिकोण में त्रिकोण रह जाता था। और रंगशीर्ष का आकार विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में विकृष्ट तथा त्रिकोण में षटकोण प्राय. होता था, और मत्तवारणी का विकृष्ट में विकृष्ट, चतुरश्र में विकृष्ट तथा त्रिकोण में चतुष्कोण।

नींव—नाट्यमण्डप की नींव मूल नक्षत्र में देनी चाहिये, ऐसा भरत नाट्यशास्त्र से ज्ञात होता है (भरत २। ४३)। नींव शंख, दुन्दुभि, मृदंग, पणव, तूर्य इत्यादि के निर्घोष के साथ (भरत २। ३७-३८) बलि इत्यादि देकर भरत २। ३९) तथा ब्राह्मण भोजन कराकर रखनी चाहिये।

भित्ति—कार्य आरम्भ करके प्रथम भित्ति का निर्माण करना चाहिये। 'भित्तिकर्मणि निवृत्तेस्तम्भानां स्थापन तत (भरत २। ४५)। किन वस्तुओं से यह बनाई

जाती थी इसपर विवाद है। परन्तु एक स्थान पर दर्शको के बैठने के हेतु जो चबूतरे बनते थे उसको इष्टिका से बनाने का निर्देश है (भरत २-६१)। यह शब्द पाणिनी मे भी मिलता है, तथा इसका अर्थ ईंट ही किया गया है, (डा० वासुदेवशरण अग्रवाल उपरोक्त पृ० १३५) ईंट लगानेवाले राजगीर को इष्टिका-वर्द्ध की कहते थे। इस प्रकार यह अनुमान करना कि नाटयमण्डप की भींत ईंटो तथा मट्टी के गारे से बनती थी कुछ अनुचित न होगा। इस प्रकार से बनी भीत सर्वकाल सुखदाई होती है, तथा पुन दूसरे स्थान पर नाट्य-मण्डप खड़ा करने के काम मे भी आ सकती है। भीत कितनी ऊँची होनी चाहिये इसका कोई विवरण नहीं मिलता। परन्तु रंगपीठ की (भरत २।६५) तथा मत्तवारणी की उँचाई को (भरत २।६६) देखते हुए ऐसा ज्ञात होता है कि भीत की उँचाई १८ फीट से कम नही होती होगी। प्रेक्षागृह की बनावट पर भी ध्यान देने से ऐसा ही पता लगता है। यदि १½ हाथ चौड़ी सीढ़ी बनाई जाती थी तो आठ पंक्तियाँ सीढ़ियो की इन प्रेक्षागृहो मे बन सकती थी। प्रत्येक पंक्ति एक दूसरे से एक हाथ ऊँची रखने की व्यवस्था है (भरत २।६२)। इस प्रकार १२ फीट उँचाई पर बैठने की अन्तिम सीढ़ी हुई। उसके ऊपर बैठने वाले का मस्तक छत मे न लगे इस हेतु तीन फीट उस सीढ़ी के ऊपर जगह छोड़नी पड़ेगी और वह इसके नीचे वाली सीढ़ी पर खडा होकर बाहर जा सके इसके लिये और ३ फीट का स्थान छोड़ना पडेगा। इस विचार से १८ फीट से कम उँचाई पर छत नहीं पट सकती थी। भित्ति भी इस अनुमान से १८ फीट ऊँची बनती थी जिस पर छत की ओरी रखी जाती होगी।

स्तम्भ—भीत बनाने के पश्चात् खम्भो के खड़े करने का निर्देश है (भरत २।४५)। शुभ तिथि मे रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र मे इस कार्य को करना चाहिये तथा इन खम्भो की तीन दिन तक पूरी रक्षा करनी चाहिये (भरत २।४६)। यह नियम इस कारण कदाचित् बनाया गया होगा कि खम्भे पृथ्वी मे पूरी तरह बैठ जायँ तथा उसके आसपास की पृथ्वी कड़ी पड़ जाय। स्तम्भस्थापना का कार्य सूर्योदय के समय होना चाहिये (भरत २।४७)। खम्भो की संख्या जोड़ने पर ऐसा ज्ञात होता है कि प्राय २४ खम्भे नाटयमण्डप के लिये खडे किये जाते थे। चार, चारो कोनो पर (भरत २।४७ ४८-४६-५०), १० प्रेक्षागृह के

हेतु (भरत २ । ६१), चार रंगपीठ बनाने के लिये (भरत २ । ६५), छः रंगशीर्ष के हेतु । ये स्तम्भ दोषरहित अर्थात् सीधे चिकने हो, घुने, दीमक लगे न हों ऐसा निर्देश मिलता है (भरत २ । ५८) । भरत ने चार खम्भो का नामकरण किया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा यह कहा है कि वैश्य खम्भा पश्चिमोत्तर मे स्थापित किया जाय (भरत २ । ४६), और शूद्र खम्भा पूर्वोत्तर मे (भरत २ । ५०), ब्राह्मण स्तम्भ पूर्व मे (भरत २ । ५०) इन वाक्यो से यह अर्थ निकलता है कि यह स्तम्भ पूर्व-दक्षिण के कोने मे होगा । क्षत्रिय स्तम्भ का स्थान निश्चित नही है । परन्तु यदि तीन स्तम्भ इस प्रकार तीन कोने पर हुए तो चौथा क्षत्रिय स्तम्भ पश्चिम-दक्षिण के कोने पर होना चाहिये । ऐसा निर्देश प्राप्त होता है कि ब्राह्मण स्तम्भ की नीव मे सुवर्ण का कर्णाभरण (कान का आभरण) रखना चाहिये (भरत २ । ५२) । क्षत्रिय स्तम्भ के मूल मे ताँबा अथवा ताँबे का सिक्का (भरत २ । ५२), वैश्य स्तम्भ के मूल मे चाँदी अथवा चाँदी का गहना (भरत २ । ५३), शूद्र स्तम्भ के मूल मे लोहा अथवा लोहे का बना हुआ कोई अस्त्र (भरत २ । ५३) । नाट्यमण्डप के दूसरे खम्भे के नीचे सुवर्ण रखा जाय । इन स्तम्भो का स्वस्त्ययन, पुण्याहवाचन तथा जय शब्द के साथ स्थापन करना चाहिये (भरत २ । ५४) । इन स्तम्भो पर मालाएँ तथा वस्त्र लपेटने की विधि मिलती है (भरत २ । ४८) । इनके रग प्राय· वही होने चाहिये जिन रंगो की वस्तु ब्राह्मणो को प्रदान करने का निर्देश मिलता है । जैसे ब्राह्मण स्तम्भ के लिये सर्व शुक्ल (भरत २ । ४८), क्षत्रिय स्तम्भ के हेतु सर्व रक्त (भरत २ । ४९), और वैश्य स्तम्भ के लिये सर्व पीत (भरत २ । ५०) तथा शूद्र स्तम्भ के हेतु नील (भरत २ । ५१) । इस प्रकार चारो कोने के खम्भे चार वर्ण की मालाये तथा वस्त्रो से लपेटने पर नाट्यमण्डप की शोभा द्विगुण बढ़ जाती रही होगी । इन स्तम्भो के स्थापित करने के पश्चात् गोदान, ब्राह्मण-भोजन इत्यादि करने का भी आदेश है (भरत २ । ५६–६०) । और खम्भो के स्थान के विषय मे भरत नाट्यशास्त्र मे कोई निर्देश नही मिलता । अभिनव भारती मे इसके विषय मे जो निर्देश मिलता है उससे केवल इतना ज्ञात होता है कि एक से दूसरे खम्भे की पारस्परिक दूरी ४ हाथ की रहनी चाहिये (अभिनव भारती, पृ० ६६-६७) । इनके स्थान भी चन्द्रभानु गुप्त जी ने अपनी पुस्तक मे दिखाये है । वे व्यावहारिक दृष्टि से उपयुक्त नही ज्ञात होते (इण्डियन थिएटर, पृ० ३९), क्योकि दर्शक इस प्रकार के प्रेक्षागृह मे

बैठकर जब नाटक देखेंगे तो उनके समक्ष खम्भे आ जायेंगे। भरत ने यह निर्देश किया है कि नाट्यमण्डप को 'शैलगुहाकार' बनाना चाहिये। उसके अनुसार खम्भे भित्ति की सीध में लगने चाहिये जैसे कार्ला के चैत्य में दिखाई देते है (जिम्मर, दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया, ख० २ चित्र ७८)। इस ढंग से खम्भो को यदि रखा जाय तो बीच का स्थान दर्शको के हेतु निर्विरोध बच रहता है। (फलक १-(१) (२) (३))। इस प्रकार खम्भे खड़े करने पर वैसीही छत बन सकेगी जैसी कार्ला चैत्य में है।

छत—स्तम्भ-संस्थापन के पश्चात् नाट्यमण्डप के छाजन का कार्य आरम्भ करना चाहिये। इसके निर्माण के विषय में कुछ निर्देश नहीं मिलता। केवल इतना ही पता चलता है कि स्तम्भ मण्डप धारण करने के हेतु ही खड़े किये जाते थे।

'दशप्रयाक्तृभि. स्तम्भा शक्ता मण्डपधार णे।' (भरत २। ६१)
विधिना स्थापयेत् प्राज्ञो दृढ़ान् मण्डप धारणे। (भरत २। ६४)
तत्र स्तम्भा प्रदातव्यास्तज्ञै मण्डपधारणे। (भरत २। ६५)

इन निर्देशो से ऐसा ज्ञात होता है कि नाट्य-मण्डप की छत खम्भो पर खड़ी की जाती थी। यह भी अनुमान होता है कि नाट्य-मण्डपो की छते फूँस की ढालुआँ धरनो पर रखकर बनती थीं। (फलक २-(३) जैसी राजगीर के मकानोकी अनुमानत' थी। (परसी ब्राउन इण्डियन आरकिटेक्चर पृ० ३), अथवा जैसी कारली के चैत्य में थी (जिम्मर दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया ख० २-चित्र ७८)। जो छत सीतावेगा मे दिखाई देती है वह भी अन्दर से ढालुआँ है (म्युजेगिमे फोटो, नं० १४८११-४)।

प्रेक्षागृह का निर्माण—इस कार्य के पश्चात् प्रेक्षागृह के निर्माण का कार्य आरम्भ किया जाता था। इसमे दस स्तम्भ लगते थे जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत २। ६१) तथा यह सीढ़ीनुमा (ईंटो का) बनाया जाता था (फलक २, २प्रे)। तथा इन सीढ़ियो पर काठ लगाया जाता था (भरत २। ६२)। प्रत्येक सीढ़ी एक दूसरे से १ हाथ ऊँची रहती थी। इस प्रकार देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि सीढ़ियो की आठ पक्तियाँ प्रत्येक प्रकार के प्रेक्षागृह मे बन सकती थीं। कुछ इसी ढंग की सीढ़ियाँ सीतावेगा गुफा के समक्ष बनी हुई प्राप्त होती है (ब्लाश, आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, १९०३-४, फलक ६२)। इन पर भी लकड़ी के पीढ़े बैठने के लिये

लगा करते थे ऐसा अनुमान है (ब्लाश, वही, पृष्ठ १२६) । प्राय ये उसी प्रकार के बनते रहे होंगे जैसे रोमन दर्शको के बैठने के पटरे बनते थे (ज्यार्ज फ्रेडले तथा जान रीव्स, ए हिस्ट्री आफ दि थिएटर—स्माल रोमन थिएटर एट ताओरमीना, फलक ४०, । ग्रीक प्रेक्षागृह से भारतीय प्रेक्षागृह आकार मे बहुत छोटे है) । संगीत रत्नाकर मे नृत्यगृह का एक वर्णन प्राप्त होता है जिससे यह ज्ञात होता है कि जब राजा नाटक देखने आते थे तो उनको बैठाने का किस प्रकार प्रबन्ध होता था । (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थिएटर, पृष्ठ २७ पर बना हुआ चित्र) ।

रंगमण्डप का निर्माण—अब रगमण्डप की भूमि को तीन भाग मे बॉटकर जैसा पहिले लिखा जा चुका है, रगपीठ, रंगशीर्ष तथा नेपथ्य की भूमि को प्रस्तुत करना शेष रहता है । मत्तवारणी का स्थान तो 'रंगपीठ' के ऊपर ही ज्ञात होता है जैसा इन वाक्यो से अनुमान होता है । 'रगपीठस्य पश्चात् तु कर्त्तव्या मत्तवारणी' (भरत २ । ६४) । मत्तवारणी शब्द पर बहुत विवाद है । परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि यह शब्द अटारी का द्योतक था । कुमारस्वामी का मत है कि रंगभूमि दो खण्ड ऊँची बनती थी (कुमारस्वामी, हिन्दू थिएटर, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली भाग ९, १९३३, पृ० ५९४) । सुबन्धु की वासवदत्ता मे मत्तवारणी को एक वरण्डिका के रूप मे हम पाते है (एम. एम घोष, नाट्यशास्त्र पृ० २९) । ऐसा ज्ञात होता है कि यह अटारी के रूप मे स्तम्भो पर रंगपीठ पर खड़ा किया जाता था तथा इसके तोरण को दो हाथी के सिर की घोड़ियॉ उठाए रहती थीं (फलक २-३), जिससे इसका नामकरण मत्तवारणी पड़ा होगा । प्राय रंगमण्डप के रंगपीठ तथा रंगशीर्ष के पारस्परिक स्थानो पर भी विवाद है, परन्तु यह स्पष्ट है कि जब नेपथ्य का स्थान जो पश्चिम है (भरत २ । ३६) उसका द्वार रंगपीठ पर खुलेगा (भरत २ । ९६-९७) तो रंगपीठ को नेपथ्य से बिलकुल मिला हुआ होना चाहिये । दूसरे हमे नाट्यशास्त्र मे रंगदेवता के पूजन का विधान मिलता है (भरत ३ । ९९) । ये देवता हिन्दू देवी, देवताओ मे से तो कोई ज्ञात नहीं होते । कदाचित् चुल्ल कोक देवता की भॉति, जिनकी मूर्ति भारहुत मे पाई गई है, (रो लेण्ड उपरोक्त चित्र १४, ए) ये भी कोई यक्ष अथवा यक्षी रहे हो जिनका पूजन प्रायः देश मे प्रचलित रहा हो । सीतावेंगा गुफा मे हमे पृथ्वी पर खुदे हुए दो चरण दिखाई देते है, इनके बीच मे एक मनुष्य मूर्ति दृष्टि गोचर होती है जो अपनी

दोनो टाँगे पूरी फैलाये हुये है (म्युजे गिमे फोटो, नं० १४८१२-८-१०)। सम्भवत ये वही रंग-देवता है जिनका वर्णन भरत नाट्यशास्त्र मे मिलता है। एक समय यक्षो के पूजन का देश मे बहुत प्रचार था (कुमारस्वामि यक्षाज ख० १, पृष्ठ, २ड ला वाले पूसॉ, इण्डो युरोपियॉ स इण्डो इरानियॉ जुस्क त्रासॉ अवॉ जीजू क्री (१९२०) पृष्ठ ३०४, ३१५ ३१६)। यदि यह धारणा ठीक है तो इन रग देवता के सिर की ओर ही रंगशीर्ष होना चाहिये तथा उनकी पीठ की ओर रगपीठ। इनका सिर प्रेक्षागृह की ओर है। इस प्रकार भी रंगशीर्ष प्रेक्षागृह की ओर बनाना चाहिये तथा रंगपीठ नेपथ्य की ओर। इस प्रकार नेपथ्य, रंगपीठ, मत्तवारणी तथा रंगशीर्ष का पारस्परिक स्थान ठीक हो जाने पर सबसे पहिले प्रत्येक की भूमि पृथिवी की सतह से अलग-अलग ऊँची उठाने के हेतु भराव करना होगा। आजकल इस कार्य को ईंटा सामने से जोड़ कर खाली स्थान मे मिट्टी भर कर किया जाता है। कदाचित् यही प्रथा पहले भी रही हो। पृथ्वी को पूर्ण रूप से तृण इत्यादि से रहित करके भरने का निर्देश मिलता है (भरत २। ७१)। इस पृथ्वी को ऐसा बनाने का आदेश है कि वह दर्पण की भाँति समतल हो (भरत, २। ७४), यह मछली की पीठ की तरह या कछुए की पीठ की भाँति न होनी चाहिये (भरत २। ७३)।

जैसा पहिले कहा जा चुका है रंगपीठ के हेतु चार खम्भो की व्यवस्था है (भरत २। ६५), चतु. स्तम्भ समायुक्ता रगपीठ प्रमाणत.। परन्तु यह नहीं पता चलता कि ये खम्भे किन स्थलो पर खड़े किये जायॅ। अनुमानत इनको ऐसे स्थानो पर खड़ा किया जाना चाहिये कि वे नाट्यमण्डप की छत के उस भाग को सम्हाल ले जो प्रेक्षागृह के पश्चिम है। अब यही रंगपीठ के पार्श्व मे एक वेदिका बनाने का भी निर्देश है (भरत २। १००)। यह भी आज्ञा है कि रगपीठ को ऊँचाई पर, तथा समथल बनाना चाहिये (भरत २। १००)। ऐसा अनुमान होता है कि रंगपीठ की उँचाई रगशीर्ष से १½ हाथ अधिक होती थी (भरत २। ६५)। रंगशीर्ष के पूर्व मे जिधर प्रेक्षागृह है, वज्र अर्थात् हीरा रखना चाहिये (भरत २। ७४)। पश्चिम मे स्फटिक, दक्षिण मे वैडूर्य (लहसुनियॉ) तथा उत्तर मे प्रवाल (मूँगा) (फिनो ले लापिडेर आडियॉ पृ० ४५-४८)। रंगशीर्ष मे छ: खम्भे खड़े करने का विधान है (भरत २। ६६)।

मत्तवारणी के विषय मे पहिले ही कहा जा चुका है कि यह अटारी की भॉति रंगपीठ पर बनती थी [फलक २, (२) म]। इसकी उॅचाई के विषय मे यह निर्देश है कि यह प्रेक्षागृह से ऊॅची न हो (भरत २ । ६६), अर्थात् प्रेक्षागृह के सबसे पीछे वाले बैठने के स्थान से ऊॅची न हो जिसमे वे दर्शक जो पीछे बैठे हों उन्हें भी इस पर का नाट्य-कार्य भली भॉति दिखाई दे। अब यदि रंगपीठ की भूमि नाट्यमण्डप की पृथ्वी से ४½ फीट ऊॅची है तथा पीछे का बैठने का स्थान १२ फीट तो मत्तवारणी ७½ फीट से ऊॅची नही बनेगी जिसमे इस पर के पात्रो का मस्तक छत से न टकराए। इसको बनाने के पूर्व ब्राह्मण भोजन कराने का उनको आसन, दक्षिणा इत्यादि देने का विधान है (भरत २ । ६८)। कदाचित् यह दान इस कारण दिया जाता था कि अटारी नाट्य-कर्म के समय गिर न पड़े, देवता इसकी रक्षा करे। मत्तावारणी एक ही बनती थी, दो नहीं।

नेपथ्य पात्रो के उपयोग के हेतु सीमित रहता था (भरत २३ । ३) तथा इसमे एक सूचिका भी बनती थी (२३ । ४) जिसमे पात्र अपने को सजाते थे। अगादिभिरभि-व्यक्तिमुपगच्छन्त्यन्नत: (भरत २३ । ४)। यह नहीं पता चलता कि यह कितनी बड़ी होती थी, अनुमानत: यह नेपथ्य के बीच मे बनाई जाती थी। भरत नाट्य-शास्त्र के पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि स्त्रियॉ भी नाट्य मे कार्य करती थी (भरत २२ । २८-४७ इ०)। यह बात कौटिल्य के अर्थशास्त्र से भी सिद्ध होती है (कौटिल्य-शास्त्र, अध्यक्ष प्रचार अधिकरण अ० २७ । ४१)। यदि यह धारणा सत्य है तो नेपथ्य-सूचिका दो विभागो मे विभक्त रहती होगी जिसमे एक ओर पुरुष मात्र अपने को वस्त्र अलंकार इत्यादि से आभूषित कर सके तथा दूसरी ओर स्त्रियॉ (फलक १ (१) (२) (३), न)। नेपथ्य मे ही वे सब वस्तुएॅ रखी जाती थीं जिनका नाट्य-कर्म के समय काम पड़ता था (भरत २३ । ५), जैसे शस्त्र, विमान, ध्वजा इत्यादि (भरत २३ । ६) तथा अलंकार, वस्त्र इत्यादि (भरत २३ । १०)। नेपथ्य से ही आकाशवाणी इत्यादि की क्रिया भी होती थी।

द्वार तथा खिड़कियाँ—ऐसा ज्ञात होता है कि प्रेक्षागृह मे दो द्वार होते थे, एक पूर्व की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर। "पूर्व दक्षिणतो वह्नि निर्वेश्य · " (भरत २ । २५)। आपस्तम्ब श्रौत-सूत्र के अनुसार पूर्व का द्वार सासारिक सुख का तथा दक्षिण का पितृलोक के सौख्य का प्रदाता होता है (स्टेला क्रामरिश टेम्पुल डोर

इत्यादि जनरल सोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट, १९४२, पृ० २४२)। इसी कारण कदाचित् पूर्व का द्वार मण्डप मे जाने के हेतु बनाया जाता था तथा दक्षिण का निकलने के लिये। आज भी प्रायः भारत मे रहने के अधिकाश गृहो का एक द्वार पूर्व की ओर होता है जिससे गृह मे प्रविष्ट होकर मंगल कार्य किया जाता है तथा दूसरा दक्षिण की ओर जिससे शव घर से निकाला जाता है। जहाँ दक्षिण द्वार नहीं होता वहाँ प्रायः भित्ति को तोड़ कर शव बाहर निकालते है। ये द्वार भूमि के चित्र फलक १ पर (१), (२) (३) औ पर दिखाये गये है। ये द्वार पूर्व तथा दक्षिण में किस स्थान पर होते थे इसका ठीक पता नहीं चलता। केवल इतना ज्ञात होता है कि त्रिकोण नाट्यमण्डप मे प्रवेश द्वार कोण मे होता था जो कदाचित् पूर्व-दक्षिण मे बनता था [फलक ३ (३) मे औ पर दिखाया गया है तथा यह निर्देश मिलता है कि 'सप्रतिद्वारं दारुविद्धं न कारयेत्' (भरत २। ८१)]। नाट्यमण्डप के अन्तर्गत ऐसा अनुमान होता है कि नेपथ्य से रंगपीठ पर आने के हेतु दो द्वार होते थे, एक जिससे पात्र प्रवेश करते थे (भरत २-९६-९७) तथा दूसरा जिसके द्वारा रंगमच पर नाट्य-विषयक सामान लाया जाता था 'रंगस्याभि मुखं कार्यं द्वितीयं द्वारमेव तु' (भरत २। ९८)। यह पता नहीं लगता कि ये द्वार कितने ऊँचे रहते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि इनमे यवनिका का ही प्रयोग होता था, कपाट नही लगते थे 'विघटाय यवनिकाम् नृत्य पाठ्य कृतानि च' (भरत, ५। १२)। कुमारस्वामी का भी यही मत ज्ञात होता है (इण्डियन हिस्टारिकल कारटरली, ६, १९३३, पृ० ५६४)।

खिड़कियो के विषय मे केवल इतना संकेत प्राप्त होता है 'नान विन्यास संयुक्तं यंत्र जाल गवाक्षकम्' (भरत २। ७८)। यह नहीं ज्ञात होता कि ये कितनी ऊँची तथा चौड़ी होती थी तथा किन स्थानो पर लगती थी। कदाचित् प्रेक्षागृह मे वायु के प्रवेश के हेतु उनका प्रयोग होता था। नासिक के विहार मे भी द्वार के दोनो ओर खिडकियाँ बनी हुई मिलती है (परसी ब्राउन, इण्डियन आर्किटेक्चर बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू, फलक २२ ए)। ऐसा अनुमान होता है कि यह प्रथा नाट्यमण्डपो मे रही होगी। फलक १ (१) (२) (३) पर इनका स्थान इ, ई पर दिखाया गया है। कदाचित् इनके कपाटो को चरखी पर लपेटी रस्सी के द्वारा खोलते बन्द करते थे। इसी कारण इन्हें 'यंत्र जाल गवाक्षकम्' कहा गया है।

यवनिका—भरत नाट्यशास्त्र में यवनिका शब्द मिलता है। जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत ५। १२)। ऐसा ज्ञात होता है कि नेपथ्य के द्वार मे यवनिका का प्रयोग तो अवश्य होता था। यवन शब्द सिलवॉ लिवि के मतानुसार ईरान से भारत मे आया (ल एतड ग्रेक, टोम ४, १८६१ पृ० २५)। परन्तु इस शब्द की उत्पत्ति के विषय मे श्री चन्द्रभानु गुप्त जी का मत ठीक चलता है (इण्डियन थिएटर, पृ० ६२-६३)। रंगमच के समक्ष भी परदा लगता था या नही, इस बात पर बहुत विवाद है। (श्री चन्द्रभानु गुप्त, इण्डियन थिएटर, पृ० ५६, ६३)। परन्तु सीताबेगा गुफा मे दो छेद पृथ्वी मे चबूतरो के समक्ष दिखाई देते है (ब्लाश, आर्के-लाजिकल सर्वे रिपोर्ट, १६०३-४, पृ० १२३) जो कदाचित् खम्भे लगाकर परदा टॉगने के काम मे आते थे क्योकि यदि रगमंच के समक्ष परदे नही लगते थे तो उस प्रकार के दृश्य जैसे मृच्छकटिक के दूसरे अंक का दृश्य जिसमे वसन्तसेना प्रेम मे तल्लीन बैठी हुई दिखाई देती है, अथवा अविमारक के दूसरे अंक का जिसमे अविमारक बैठा हुआ दिखाई देता है, या जैसे शाकुन्तल नाटक मे दुष्यन्त की राजसभा का दृश्य इत्यादि कैसे दिखाए जाते रहे होगे ? नाटक को अंको मे बॉटने का ध्येय का ही अन्त हो जाता है यदि रंगमंच के समक्ष परदा न हो। पूर्व रंग की भी क्रिया परदे के पीछे करना है और रंगशीर्ष पर। इस प्रकार भी यही ध्यान मे आता है कि रंगमंच के समक्ष परदा रहता था तथा आवश्यकतानुसार मत्तवारणी के समक्ष भी परदा टॉगा जाता था जिससे उसका स्वरूप घर के ऐसा बन जाय जिसकी आवश्यकता ऐसे दृश्यो को दिखाने मे अवश्य पड़ती रही होगी जैसे मृच्छकटिक के तीसरे अंक मे जब शर्विलक भीत को अपने जनेऊ से नापता है। यह तो पहिले ही लिखा जा चुका है कि नेपथ्य के दोनो द्वारो पर परदे रहते थे जिन्हें हटाकर पात्र रगपीठ पर आते थे जैसा मृच्छ-कटिक के दूसरे अंक मे समवाह के विषय मे मिलता है। उसी नाटक के उसी अंक मे कर्णपूरक भी परदा झटके से हटाकर प्रवेश करता है। यह परदा नेपथ्य के द्वार का ही ज्ञात होता है।

नाट्यमण्डप की सजावट—रंग-मण्डप को अर्थात् उसके मुख को पर्वत की गुफा के समान बनाने का निर्देश प्राप्त होता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है (भरत, २। ८१)। यह कार्य कदाचित् काष्ट लगा कर ही किया जाता रहा होगा। यो ऐतिहासिक तथ्य के अतिरिक्त भी इस प्रकार के रंग-मण्डप के मुख से पात्रो

द्वारा प्रतिध्वनित शब्द दूर तक प्रयाण करते है यह अनुभव सिद्ध है। इसके पश्चात् रंगमण्डप का बहिरंग काष्ठ-तोरण (भरत २।७७) से सुसज्जित किया जाता था। ईंटो की जोड़ाई के पश्चात् नाट्यमण्डप के शृंगार की व्यवस्था मिलती है, जिसमे सबसे प्रथम लकडी के काम करने की आज्ञा है (भरत २ । ७६)। लकड़ी के तोरण, लताये, अट्टालिका, नाना विन्यासयुक्त गवाक्ष, शालभंजिका इत्यादि बनाये जाते थे (भरत २ । ७६, ७७, ७८, ७९)। इनमे से स्तम्भो पर लताये, कपोल इत्यादि लगाये जाते थे (भरत २ । ७९) तथा नाना भाँति से वेदिकाओ की शोभा बढ़ाई जाती थी (भरत २ । ७८)। इन आदेशो पर विचार करने से बरबस साँची के खम्भे, तोरण इत्यादि का स्मरण आ जाता है (मार्शल और फूशे, दी मानुमेण्ट्स आफ साँची, फलक ४०, पृ० ३४-३५ इत्यादि)। इन वस्तुओ को लगाने के विषय मे यह आदेश प्राप्त होता है कि इनको इस प्रकार लगाना चाहिये कि ये किसी द्वार के समक्ष न पड़े (भरत २ । ८१)।

रंगाई छुहाई—इस प्रकार काष्ठ-कर्म को पूरा करके भीत की सजावट प्रारम्भ करनी चाहिये ऐसी आज्ञा है (भरत २ । ८०)। भीत पर अच्छा भित्तिलेप चढ़ाना चाहिये (भरत २ । ८३)। कदाचित् यह भित्तिलेप उसी प्रकार का बनाया जाता होगा जैसा अजन्ता तथा सीतावेंगा की गुफाओ मे मिलता है। भित्तिलेप मे चूने का लेवा, पानी शीघ्र सोख लेने के दुर्गुण के कारण नहीं व्यवहार किया जाता था (श्रीमन्त बाला साहब पन्त प्रतिनिधि अजन्ता, पृ० ३१)। इसके स्थान पर मिट्टी का लेवा लगाया जाता था। श्री राय कृष्णदास जी का कथन है कि अजन्ता मे गोबर तथा पत्थर का चूरा तथा कभी-कभी भूसी मिले हुए गारे का लेवा चढ़ाया जाता था। यह लेवा चूने के पतले पलस्तर से ढका जाता था (राय कृष्णदास, भारतीय चित्र कला, पृ० १३)। अनुमानत' नाट्यमण्डप की भीतरी भित्ति पर भी मिट्टी तथा भूसी को मिलाकर लेवा चढ़ाया जाता था। इस पलस्तर को पीटकर समथल किया जाता था। इस लेवे के सूखने के पश्चात् एक कोट बरी का चूना चढ़ाया जाता था जिसको सूखे नेनुएँ से रगड़कर चिकना किया जाता था। इस पर पुन शंख पीसकर उसका लेप चढ़ाते थे तथा उसे बट्टी मारकर चिकना करते थे। ऐसा करने से ही भीत चमक सकती थी जैसा नाट्यशास्त्र मे नाट्य-मण्डप की भीत का विवरण मिलता है (भरत २ । ८४)। बाहर की भीत पर चूना पोता जाता

था—'सुधा कर्म तथैवास्य कुर्यात् बाह्यं प्रयत्नतः' (भरत २ । ८४)। नाट्य-मण्डप की भीतर की भीत पर जमीन बाँधकर चित्र-कर्म किया जाता था (भरत २ । ८५)। इनमे स्त्रियो के साथ भोग के दृश्य तथा लताये इत्यादि अंकित किये जाते थे (भरत २ । ८५, ८६)। इस प्रकार के चित्र कुछ जोगीमारा की गुफा मे भी प्राप्त होते है (ब्लाश, आर्केलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, १९०३–१९०४, पृ० १०३)। इन चित्रो के विषय को श्री रायकृष्णदास जी ने बताया है (भारतीय चित्रकला, पृ० ७)। भरत नाट्यशास्त्र में इन प्रधान रंगो के नाम प्राप्त होते हैं, काला, नीला, पीला तथा लाल—इन रंगो को मिलाकर और रंग बनाये जाते थे जिनसे चित्रकारी भी की जाती होगी। जोगीमारा की गुफा मे जो चित्र है वे बहुत ही थोड़े रंगो से बने हुए प्रतीत होते है (ब्लाश, वही, पृ० १०३, १०४)।

रंगमंच पर संगीतज्ञों का स्थान—ऐसा ज्ञात होता है कि रंगशीर्ष पर ही संगीतज्ञो का स्थान था (भरत, ५ । २७, ८८ तथा ३३ । २०६ पृ० ४४६)। भरत नाट्यशास्त्र का एक पूरा अध्याय विविध वाद्यो तथा नाटक मे उनके व्यवहारो पर है (भरत अ० ३३)। विविध वाद्य जो भरत नाट्यशास्त्र मे मिलते है, वे है मृदग, पणव, दुर्दुर (भरत ३३–२) दुन्दुभि, मुरज, आलिंग्य, ऊर्ध्वक, अङ्किक, (भरत ३३–११) भेरी, पटह, झञ्झा, दुदुभी, डिण्डिम, (भरत ३३ । २७), शारीर्य वीणा, (भरत ३३ । ३१), मृदग, दुर्दुर, पणव अंग झल्लरो, (भरत ३३ । ६), पुष्कर (भरत ३२ । १०), शंख तूर्य (२ । ३७, ३८) विपञ्ची, चित्रा दारवी, कच्छपी, घोष (भरत ३३ । १५) शख, डक्फनी (भरत ३ । १७) इत्यादि। वाल्मीकि की रामायण मे हमे, मड्डुक, पटह, वम्श, विपाञ्ची, मृदग, पणव, डिण्डिम, आडम्बर, कलशी नाम वाद्यो के प्राप्त होते हैं (रामायण, ५ । ११ । ३८) राय पसेणी सुत्त मे भी हमे इनसे मिलते जुलते नाम दृष्टिगोचर होते है (जगदीश चन्द्र जैन, लाइफ इन एनशन्ट इण्डिया एज डिपिक्टेड इन जैन कानन्स, पृ० १०३)। इससे ऐसा विश्वास होता है कि उस समय ये नाम प्रचलित हो चुके थे। भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार मार्दंगिक को रंगशीर्ष पर पूर्व मुख बैठाना चाहिये अथवा दर्शको की ओर उसका मुख होना चाहिये। पाणविक तथा परदारिक को इसके बाये तथा दाहिने ओर पूर्वमुख बैठना चाहिये। गायणिक उत्तराभिमुख बैठे, या यो समझिये कि रंगमच के दक्षिण की ओर। गायकी उत्तर की ओर प्रतिष्ठित हो,

इनके बाये वेणिका तथा इनके दक्षिण बाहू पर वमसारिका (भरत नाट्यशास्त्र, २३ । २०६ चौखम्भा पृ० ४४६) ।

आलोक—नाट्यमण्डप के आलोक के हेतु दीपक व्यवहार मे आता था (भरत ३ । ९२–९३) । ऐसा अनुमान होता है कि कुशाण काल की परइयाँ जो स्थान स्थान पर खोदाई मे निकली है कदाचित् दिये का काम देती थीं । (बी० बी० लाल एक्सकवेशन्स एट हस्तिनापुर इत्यादि, एनशण्ट इण्डिया न० १०-११ फलक २०, १ की भाँति की परई) । इस प्रकार बहुत से दीपक रख कर ही नाट्यमण्डप मे उजाला किया जाता होगा । मशाल से भी कदाचित् काम लिया जाता होगा ।

नाटक का समय—भरत नाट्यशास्त्र के अनुसार अपराह्न मे, प्रभात के समय, सूर्यास्त के समय, अर्धरात्रि में भोजन के समय तथा भोजन पूर्व के समय को छोड़कर दिन-रात्रि के किसी भी समय नाटक खेले जा सकते थे (भरत २७ । ८५, ८६, ८७, ९३) । परन्तु विशेष समय विशेष प्रकार के नाटक खेले जाते थे । धार्मिक विषय के नाटक, दिवस के मध्याह्न के पूर्व खेले जाते थे (भरत २७ । ८९) । वीररस के मध्याह्न के पश्चात् (भरत २७ । ९०), शृंगाररस के सूर्यास्त के पश्चात् (भरत २७ । ९१), करुणरस प्रधान नाटक अर्धरात्रि के पश्चात् (भरत २७ । ९२) । आज प्राय: सभी रस के नाटक सन्ध्या अथवा रात्रि के समय ही खेले जाते है । प्राचीन भारत मे विशेष समय विशेष रस के उत्पादन के हेतु उपयुक्त समझा जाता था, जैसे संगीत मे भैरवी का समय प्रात:काल ही रखा गया है, श्री का संध्या तथा मालकोस का रात्रि मे ।

निष्कर्ष-भरत नाट्यशास्त्र मे दिये हुए नाट्यमण्डप के आकार-प्रकार तथा उसकी सजावट को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि भरत के समय तक भारत के आदिवासियो के नाट्यमण्डपो का प्राथमिक रूप जो हमे सीतावेगा गुफा, हाथी गुम्फा तथा नासिक के पास की पुलुमई गुफा मे प्राप्त होता है (हेमेन्द्रनाथ दासगुप्ता, दि इण्डियन स्टेज, खण्ड १ पृ० ४५), वह आर्यों के प्राचीनतम लकड़ी के मकानो के रूप मे समन्वित होकर तथा दोनो के सम्मिश्रण से एक नया ढाँचा खड़ा हो चुका था । यही नही, नाट्यमण्डप के रूप के विषय मे नियम भी बन चुके थे तथा उनपर धर्म का नियंत्रण भी आरम्भ हो चुका था जैसा पग-पग पर भरत नाट्यशास्त्र मे

पूजाओ के निर्देश से ज्ञात होता है (भरत, २ । ६, ३३, ६०, ६२ इत्यादि) । ये नियम इतने कड़े थे कि नापने की रस्सी टूट जाना (भरत २ । ३०) तथा एक स्तम्भ का दोषयुक्त होना (भरत २ । ५७), नाट्यमण्डप के स्वामी के मरण का सूचक समझा जाने लगा था । भरत के समय तक भारतीय रंगमंच इस महान संसार का द्योतक माना जाने लगा था जहाँ स्त्री पुरुष प्रविष्ट होकर अपनी पूर्व निश्चित लीला करते है तथा उसके संवरण पर यहाँ से विदा लेते है। इस कारण इसके रूप तथा इसकी बनावट मे उन महान् उद्देश्यो का सम्मिश्रण हो चुका था जो प्रकृति के नियन्त्रण मे सामञ्जस्य का आविर्भाव करते है ।

* विषय सम्बन्धित ग्रन्थ सूची *

१—अगरवाल, वासुदेव शरण डा०—इण्डिया अएज नोन टु पाणिनि, युनिवर्सिटी आफ लखनऊ, १६५३ ।

२—अग्नि पुराण—स० श्री पञ्चानन तारकरत्न जी, वगवासी स्टीम मशीन प्रेस कलकत्ता, १६१२ ।

३—अभय देव—राय पसेणीय सूत्त, अहमदाबाद, १६६४ वि० ।

४—अभिनव भारती—स० रामकृष्ण कवि, बरोदा ।

५—आचार्य, पी. के —ए डिक्शनरी आफ हिन्दू आर्किटेक्चर, अलाहाबाद, १६२७ ।

६—कालिदास ग्रन्थावली—सं० प० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद, २००७ वि ।

७—कीथ, ए वी , दी सस्कृत ड्रामा—इट्स ओरिजिन, डेवलपमेन्ट, थियोरी एण्ड प्रक्टिस, क्लारेण्डन प्रेस आक्सफोर्ड, १६२४ ।

८—कुमार स्वामी, ए. के., हिन्दू थिएटर—इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, ख०–६ (१६३३) पृ० ५६४ ।

६—कुमार स्वामी, ए. के.—इण्डियन आर्किटेकचरल टर्म्स, अमेरिकन ओरियण्टल जर्नल, ख० ४८, पृ० २५० तथा आगे ।

१०—कुमार स्वामी, ए के.—अर्लि इण्डियन आर्किटेकचर ईस्टर्न आर्ट, ख० २, ३ ।

११—कौटिल्य अर्थशास्त्र—स० जे. जोली–ख० १, २, मोतीलाल बनारसी दास लाहोर, १६२३ ।

१२—ग्रोसे, जे —नाट्य शास्त्र डु भरत, लीयो (फ्रास), १८६८ ।

१३—ग्रोसले, जियोर्ज—लो थीयाट्र ए ला डास ओ कम्बोज, जुर्नाल आजियातिक, ख० ११६४, जाँवियें-मार्श पृ० १२५-१४३ ।

१४—चतुर्वेदी, सीताराम पं०—अभिनव नाट्य शास्त्र, अखिल भारतीय विक्रम परिषद काशी, २००८ वि० ।

१५—**जगदीशचन्द्र जैन**—लाइफ इन एन्सन्ट इण्डिया अएज डिफ्क्टिड इन जैन केनन्स, न्यु बुक लिमिटेड, बाम्बे, १९४७ ।

१६—**जायसवाल**—हाथी गुम्फा इन्सक्रिपशन जर्नल विहार उडिस्सा रिसर्च सोसायटी १९१८, पृ० ३६३, ३६६ ।

१७—**दास गुप्ता, हेमेन्द्र चन्द्र, डा०**—दी इण्डियन स्टेज ख०-१, २ कलकत्ता ।

१८—**परसी ब्राउन**—इण्डियन आर्किटेक्चर, हिन्दू एन्ड बुद्धिस्ट, तारापुरवाला, बाम्बे, १९४२ ।

१९—**पाणिनि सूत्र**—स० शोभित्र मिश्र, जयकृष्ण दास, हरिदास गुप्त, विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९५२ ।

२०—**फूशे हिप्पोलिट**—रामायण डु वाल्मीकि. पारी १८५४ ।

२१—**बरुआ, बी. एम**—इन्सक्रिपशन्स आफ अशोक, कलकत्ता, १९४३ ।

२२—**ब्लाश, टी. जे,**—केव्स एण्ड इन्सक्रिपशन्स रामगढ हिल, आर्केआलाजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ इण्डिया, १९०३, १९०४, पृ० १२३, १३० ।

२३—**बोस, मोनिन्द्र मोहन**—दी रिलिजन आफ अशोक बुद्धा जर्नल आफ दी डिपार्टमेन्ट आफ लेटर्स युनिवर्सिटी आफ कालकत्ता, ख० १० (१९२३) पृ० १२९ तथा आगे ।

२४—**भरत नाट्यशास्त्रम्**—विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९८५ वि० ।

२५—**भण्डारकर, डा०**—अशोक, युनिवर्सिटी आफ कालकत्ता, १९३२ ।

२६—**मनकड, डी आर.**—हिन्दू थियेटर इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली ख० ७ (१९३२) पृ० ४८० तथा आगे ।

२७—**मन मोहन घोष**—नाट्य शास्त्र, रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, १९५० ।

२८—**मन मोहन घोष**—प्राचीन भारतेर नाट्यकला, कलकत्ता, १९४५ ।

२९—**महाभारत**—स० रामचन्द्र शास्त्री, चित्रशाला प्रेस, पूना, १९३६ ।

३०—**मार्के, ई.**—फरदर एक्सक्वेशन्स एट मोहन जुदाड़ो, न्यु देलही, १९३८ ।

३१—**मार्शल**—मोहन जुदाडो एण्ड दी इण्डस सिविलजेशन, ख० १, २, ३, लन्दन, १६३१।

३२—**याज्ञिक, आर के**—दी इन्डियन थियेटर इट्स ओर्जिन एण्ड इट्स लेटर डेवलपमेन्ट्स अण्डर योरोपियन इन्फलुअेन्स, ज्योर्ज एलन उनविन, लन्दन, १६३३।

३३—**रेनु, एल. ऐ**—फिलियोजा, जे, एण्ड क्लासिक, पारी, १६४७।

३४—**रेनू, एल. इत्यादि**—डिक्सियोनेर सस्कृत, फ्राँसे, पारी, १६३२।

३५—**राओ–जी**—ऐलीमेण्ट्स आफ हिन्दु आइकोनोग्रफी–मद्रास, १६१४।

३६—**लेवी-सिलवॉ**—प्रे आर्या ए प्रे द्राविडियॉ, जुरनाल आजियातिक, जुइये १६२३।

३७—**लेवी-सिलवॉ**—लो थियाट्र ॲाण्डियाँ, पारी, १८६०।

३८—**लेवी-सिलवॉ**—ला ग्रेस ए लाण्ड, रेव्यु, डेज, इत्युड ग्रेक, ख० ४, १८६१, पृ० २४, २५।

३६—**श्री शुक्ल यजुर्वेद संहिता, माध्यान्दनी**—खेमराज श्री कृष्णदास, बाम्बे, १६२७।

४०—**सारंग देव**—सगीत रत्नाकर, आनन्द आश्रम प्रेस, पूना।

४१—**हज़रा, आर. सी.**—बुद्धिस्ट एविडेन्स आफ दी अर्ली एक्जिस्टेन्स आफ ड्रामा, इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, ख० १७, न० २ (जून १६४१), पृ०, १६६, २०६।

———

न
र
मत्त
रं०शी०
प्रे०
उत्तर
पूर्व
(१)
(२)
(३)
सूची गृह
न नेपथ्य
र रङ्गपीठ
म मत्तवारणी
रं०शी० रङ्गशीर्ष
प्रे० प्रेक्षागृह
उत्तर
पूर्व
एक सेण्टिमीटर (cm) = चार हाथ

फलक 1

ख
घ
न
छ
ज
ड
र
म
झ
ञ
र० शी
ग
ब
औ
ह
प्रे०
इ
क
औ
ड
(१)
(२)
म
र
(३)
सूची गृह
न नेपथ्य
र रङ्गपीठ
म मत्तवार्णी
र० शी० रङ्गशीर्ष
प्रे० = प्रेक्षागृह
उत्तर
एक सेण्टिमीटर (cm) = चार हाथ

फलक २